Cognitive Thinking: An International Journal of Interdisciplinary Studies
Vol. 2, Issue-2 (April-June, 2026), pp.105-111, ISSN: 3107-5088, www.cognitivethinking.in

विनायक दामोदर सावरकर की दृष्टि में जातिभेद की संकल्पना:- एक सिंहावलोकन

लेखकद्वय:-
1. प्रो. (डॉ.) संजय कुमार सिंह
शोध निर्देशक/ प्रोफेसर, इतिहास विभाग, एम.एम.एच. कॉलेज, गाजियाबाद

2. सूर्य प्रकाश
शोधार्थी/ असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, मिहिर भोज पी.जी. कॉलेज, दादरी, गौतमबुद्धनगर

Article/Interview: Received: 20/05/2026, Accepted: 27/05/2026, Published:30/05/2026.
D.O.I.
© 2026 The Author(s). This is an Open Access article/ Journal distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are properly credited. (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/)

प्रस्तावना:- भारतीय परंपरा में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन वैदिक काल से रहा है। उस काल से लेकर अब तक वर्ण जातियों में और जातियाँ उपजातियों में क्रमशः विभक्ति होती चली गई। इस कारण भारत में जातिभेद की गंभीर समस्या का जन्म हुआ। भारत के विभिन्न बुद्धिजीवियों ने अपने सामाजिक विचारों का केंद्र बिंदु इस समस्या को बनाया। इसी क्रम में आधुनिक भारत के महान क्रांतिकारी एवं विचारक विनायक दामोदर सावरकर ने भारत में प्रचलित जातिभेद की समस्या संबंधी विविध पहलुओं जैसे अवधारणा, कारण, हानि, समाधान आदि पर व्यावहारिक एवं शास्त्रीय रूप से विचार किया। उनके विचार प्राचीन ब्राह्मण साहित्य एवं समाज के प्रति उनके व्यावहारिक ज्ञान पर आधारित थे जो वर्तमान जनमानस के बीच में सार्वजनिक पटल पर नगण्य रूप में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में विनायक दामोदर सावरकर की जातिभेद संबंधी संकल्पना का प्रामाणिक रूप से विश्लेषण किया जाएगा।

बीज शब्द:- जातिभेद, समाज, जन्मजात, भेदभाव, वर्ण व्यवस्था, जातियाँ।

मुख्य अंश:- विनायक दामोदर सावरकर की दृष्टि में जातिभेद का अर्थ भारतीय समाज में उपस्थित विभिन्न जातियों के बीच पाया जाने वाला उच्चता व निम्नता का वह असामान्य भाव है जो उनके बीच भेदभाव एवं असहिष्णुता को बढ़ावा देता है। इस भाव की जड़ें उत्तर वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था में समाहित है। सावरकर के अनुसार जहाँ ऋग्वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के सदस्य आपस में मिलजुल कर सौहाद्रपूर्वक जीवन यापन किया करते थे। उस समय वर्णों में जटिलता नहीं आई थी और वर्ण जन्मजात ना होकर व्यवसाय पर आधारित होते थे।[1] अर्थात जो व्यक्ति जैसा कर्म करता था, उसे उसी वर्ण का माना जाता था। वैदिक कालीन हिंदू समाज के चारों वर्ण में परस्पर विवाह आदि होते थे। सारे ब्राह्मण इकट्ठे बैठ सकते थे, आपस में विवाह कर सकते थे। वैसे ही करोड़ों शूद्रों के वर्ग आपस में खाते-पीते विवाह करते थे। लेकिन उत्तर वैदिक काल के पूर्वार्द्ध से अब तक वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत व्यापक बदलाव देखने को मिला। धीरे-धीरे अपरिहार्यतः उस चातुर्वण्र्य जाति प्रथा को जातिभेद का स्वरूप प्राप्त हुआ। पूर्व के चार वर्णों में उनसे उत्पन्न प्रमुख जातियाँ, उपजातियाँ और अन्य जातियों के प्रवाह भी आकर जुड़ते गए।[2] आज जातिभेद की स्थिति क्या है, अकेले ब्राह्मणों में सैकड़ों जातियाँ हैं। क्षत्रियों मे सैकड़ों हैं, वैश्यों में सैकड़ों और शूद्रों में तो हजारों जातियाँ हैं, जितने पंथ उतनी जातियाँ। जितने प्रांत उतनी जातियाँ। जितने व्यवसाय उतनी जातियाँ।

जितने पाप उतनी जातियाँ। जितने अन्न उतनी जातियाँ।[3] विनायक दामोदर सावरकर ने भारत में व्याप्त जातिभेद की समस्या का गहन विश्लेषण किया और उन्होंने पाया कि विविध प्रकार के जातिभेद भारत में व्याप्त हैं[4] जैसे :-

1. वर्ण विशिष्ट जातिभेद:- यह भारत में प्रचलित सामान्य जातिभेद है। इसके अंतर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अति शूद्र या पंचम वर्ण को सम्मिलित किया जाता है। यद्यपि सावरकर पंचम वर्ण को मनाने का विरोध करते हैं। उन्होंने एक प्राचीन उक्ति का भी उल्लेख किया जिसके अनुसार पंचम वर्ण का कोई अस्तित्व नहीं है।

ब्राह्मणः क्षत्रियों वैश्यः त्रयो वर्णाः द्विजातयः ।
चतुर्थरेकजातिस्तु क्षुद्रो नास्ति तु पंचमः ।।

2. प्रांत विशिष्ट जातिभेद:- इसके अंतर्गत विभिन्न वर्णों में प्रांत आधारित जातिभेद भी पाया जाता है जैसे ब्राह्मणों में पंजाबी ब्राह्मण, मैथिली ब्राह्मण, मराठी ब्राह्मण आदि। इनके बीच भी पर्याप्त जातिभेद व्याप्त रहता है। वैश्यों में कोकणस्थ, देशस्थ अलग-अलग जातियाँ हैं।

3. पंथ विशिष्ट जातिभेद:- इसमें पंथों के आधार पर जातिभेद दृष्टिगोचर होता है जैसे ब्राह्मणों में वैष्णव ब्राह्मण, ब्रह्मा ब्राह्मण, शैव ब्राह्मण , शाक्त ब्राह्मण; इस तरह वैश्यों में भी जैन वैश्य, वैष्णव वैश्य, लिंगायत वैश्य आदि।

4. व्यवसाय विशिष्ट जातिभेद:- इसके अंतर्गत विभिन्न वर्ण के लोग जो व्यवसाय करते हैं उसके आधार पर उनकी उतनी ही जातियों का निर्माण माना जाता है जैसे शूद्र वर्ण में ठठेरे, माली, नाई, सुनार बुनकर, लोहार, बढ़ई, दर्जी, कुम्हार जैसी तमाम जातियाँ हैं। कटक प्रान्त के कुम्हारों में बैठकर चाक चलने वाले, छोटे मटके बनाने वाले, खड़े होकर चाक चलने वाले, बड़े मटके बनाने वाले व्यवसाय आधारित अनेक जातियाँ हैं। कच्चे दूध व गर्म दूध से मक्खन निकालने वाले ग्वालों की अलग-अलग जातियाँ हैं। दाएं से बाएं जाल बुनने वाले मछुआरों की जाति अलग और बाएं से दाएं जाल बुनने वालों की जाति अलग है।

5. आहार विशिष्ट जातिभेद:- सावरकर के अनुसार वर्णों में आहार के आधार पर भी जातिभेद भी देखा जा सकता है जैसे ब्राह्मणों में शाकाहारी ब्राह्मण और मांसाहारी ब्राह्मण। मांसाहारी ब्राह्मणों में भी मछली खाने वाले ब्राह्मणों की जाति अलग, मुर्गा खाने वाले ब्राह्मणों की जाति अलग और बकरा खाने वाले ब्राह्मणों की जाति अलग-अलग होती है। वहीं मछली खाना महापाप समझने वाले कनौजिया ब्राह्मण इससे क्रोधित होकर उस मत्स्याहारी ब्राह्मण की जाति से रोटीबंदी करके संबंध तोड़कर केवल बकरे का मांस, वैदिक धर्म मानकर स्वीकार करता है।

6. संकर विशिष्ट जातिभेद:- स्मृतियों के अंतर्गत विभिन्न वर्णों के अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों के आधार पर उत्पन्न संतानों को एक नया नाम देकर नई जाति का निर्माण किया गया जैसे :-

अनुलोम विवाह

पुरुष	**स्त्री**	**संतान**
ब्राह्मण	क्षत्रिय	मूर्धभिषिक्त
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ठ
ब्राह्मण	शूद्र	निषाद/ पारशव

क्षत्रिय	वैश्य	माहिष्य
क्षत्रिय	शूद्र	उग्र (यवन)
वैश्य	शूद्र	करण

प्रतिलोम विवाह

पुरुष	**स्त्री**	**संतान**
क्षत्रिय	ब्राह्मण	सूत
वैश्य	ब्राह्मण	वैदेहक
वैश्य	क्षत्रिय	पुक्कुस/ मागध
शूद्र	ब्राह्मण	चांडाल/ अप्रीतरन
शूद्र	क्षत्रिय	क्षतृ
शूद्र	वैश्य	आयोगव

सावरकर के अनुसार हिंदू जगत सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से चार हजार जन्मजात जातियों में दृढ़ता, शास्त्र सम्मति और सर्व सम्मति से विभाजित हुआ। उस वैदिक हिंदू राष्ट्र का यह सामाजिक स्थित्यंतर उस काल की ऐतिहासिक आवश्यकता के कारण ही हुआ।[5] लेकिन परवर्ती काल में इससे जन्मजात जातिभेद की अवधारणा को बल मिला। भारत में प्रचलित जातिभेद को जन्मजात माना जाता है जबकि ऐसा गलत है। इस संदर्भ में सावरकर के अनुसार जन्मजात शब्द का ठीक अर्थ होता है कि जन्म से ही भिन्न जाति जैसे गाय, घोड़ा, मनुष्य, बंदर आदि जातियाँ। इस प्रकार यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, मराठा, राजपूत, जाट, चमार, भंगी आदि हिंदुओं की आज की मानव जातियों में जन्मजात भेद होता तो उसको मिटा देना हमारे तुम्हारे लिए असंभव हो जाता। यह तथाकथित जातिभेद ऐसा जन्मजात नहीं है जिसको केवल ब्रहमदेव ही बदल सके बल्कि कोई भी मनुष्य जब जी चाहे तब टोपी की तरह इसे बदल सकता है। यह कृत्रिम है, माना हुआ है, सांकेतिक है।[6] जन्मजात जातिभेद की समस्या को सावरकर इस व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं कि गाय ने घोड़ी को छू दिया, उसके चनों में से दो-चार वह खा गई या गाय के पात्र से थोड़ा पानी घोड़ी पी गई। इससे गाय और घोड़ी की जाति एकाएक बदल गई। गाय के सींग गायब होकर या घोड़ी के सींग निकल कर, देखते ही देखते कहीं घोड़े की गाय बन गई और उसने रम्भाना शुरू कर दिया या कहीं गाय से घोड़ी बन गई और हिनहिनाने लगी। ऐसा होते ही पश्चाताप से प्रेरित होकर घोड़ा पंचगव्य प्राशन करते ही फिर अपनी गाय की गाय और घोड़ी की घोड़ी बन गई। यदि ऐसा होता भी तो उनके जातिभेद के लिए जो जन्मजात शब्द हम प्रयुक्त करते हैं वह ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के जातिभेद के लिए भी प्रयुक्त कर सकते हैं। परंतु ऐसा कुछ भी हो जाए तो भी गाय की घोड़ी और घोड़ी की गाय नहीं बन सकती।[7] स्पष्ट है कि जातियाँ भिन्न होने से उनमें अंतर्परिवर्तन असंभव है।

सावरकर ब्राह्मण साहित्य के माध्यम से भी जातिभेद को गुणजात सिद्ध करते हैं उनका कहना है कि श्रीकृष्ण ने भगवत गीता में कहा कि *चातुर्वर्णमया सृष्टम गुणकर्म विभागशः* अर्थात चारों वर्णों की रचना

मैंने (श्रीकृष्ण) की है और यह गुण कर्म के आधार पर रचना हुई है ना कि जन्मजात आधार पर। वहीं स्मृतियों में उल्लेख है कि *जन्मना जायते शुद्र* अर्थात सभी व्यक्ति जन्म से शुद्र होते हैं और संस्कार आदि से द्विजत्त्व का अधिकार प्राप्त करते हैं।[8]

सावरकर के अनुसार आज हम हिंदुओं में जिसे जन्मजात जातिभेद कहा जाता है वह वास्तव में पोथीजात है।[9] मद्रासी ब्राह्मणों की अपेक्षा मराठी चमार गोरे होते हैं। महार जैसी निकृष्ट समझी जाने वाली जाति में चोखा मेला जैसे संत और डॉ. अंबेडकर जैसे विद्वान पैदा होते हैं तो उत्तर हिंदुस्तान में सैकड़ों ब्राह्मण पीढ़ी दर पीढ़ी खेती करते हैं और निरक्षर होते हैं।.......कायस्थों को शूद्र माना जाता है पर बंगाल के विवेकानंद, अरविंद, पाल, घोष, बोस आदि कायस्थ; बुद्धि में, विद्या में, बंगाली ब्राह्मणों से आगे ही रहे हैं। पानीपत का सेनापति भाउ ब्राह्मण, 'यातिशुद्र' वंश तुकाराम परमसंत। इन सब अखंडित साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि पाँच हजार वर्ष के पूर्व क्या था और क्या नहीं था। उसे भी छोड़े तो आज जो जातियों में भिन्नता मानी जाती है उसमें वर्ण या गुण या कर्म आदि के आधार पर संघशः ऐसी कोई निश्चित जन्मजात भिन्नता दिखती नहीं है। वे जातियाँ जन्मजात ना होकर आज केवल पोथीजात रह गई है। कोई भी विशिष्ट उच्चता जन्मतः ना होते हुए भी चूँकि पोथी में उच्च जात कही हुई है अतः जिस घर के दरवाजे पर 'ब्राह्मण' का पट लगा हुआ है उस घर में जन्म लेने वाला ब्राह्मण और वैसे ही क्षत्रिय। यह स्थिति यथार्थ रूप में व्यक्त की जा सके इसलिए हमने नया शब्द बनाया 'पोथीजात'।[10]

यह पोथीजात जातिभेद की बला पृथ्वी के किसी भी धुरंधर राष्ट्र में रूढ़ नहीं है। जापान, रूस, ईरान, तुर्किस्तान, इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी इन सबको ऐसा जातिभेद समाज में करना आवश्यक नहीं लगा। उनके व्यवसाय जन्मजात नहीं है इसलिए उनके ज्ञान, बल, संगठन में जातिभेद नहीं है इसलिए दुर्बलताएं हैं क्या? उल्टे आज इन सब गुणों में वे हमसे हजारों गुना उन्नत, संपन्न और प्रबल है और सामाजिक उन्नति का सनातन मंत्र मानकर जिस जातिभेद को हम चिपकाए बैठे हैं वह हमें ही चारों खाने चित हमारी छाती पर चढ़ा हुआ है।[11] पोथीजात जातिभेद तो एक मनोरोग है मन नहीं माने तो वह तुरंत ठीक हो जाता है। आजकल प्रचलित पोथीजात जातिभेद के चार मजबूत पर हैं जैसे स्पर्शबंदी, व्यवसाय बंदी, रोटी बंदी और बेटी बंदी। इन चार पैरों पर चलने वाला यह पोथीजात जातिभेद एक भयानक चतुष्पाद प्राणी है। इनमें से उसका आगे का व्यवसाय बंदी वाला पैर लगभग पहले से ही लचका हुआ है।[12]

सावरकर जातिभेद के उस उग्र रूप की भी भर्त्सना करते हैं जिसमें यह माना जाता है कि कोई व्यक्ति यदि उच्च वर्ण में पैदा हुआ है तो उसमें उस वर्ण संबंधी विशिष्ट गुण न होते हुए भी उसे उस वर्ण का माना जाता है। उनके अनुसार कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ है इसी कारण उसमें कोई विशिष्ट गुण ना होते हुए भी उसे अग्रपूजा का, वेदोक्त का तथा प्राचीन निर्बंधानुसार अवध्यत्व आदि विशिष्ट जन्मजात अधिकार प्राप्त होते हैं तथा कई सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं, उन्हें बंद करना है। किसी का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ है अतः उसे सिंहासन का एवं वेदोक्त राज्याभिषेक का अधिकारी मान लेना तथापि शिवाजी जैसा पराक्रम स्वतंत्र राज्य स्थापित करने पर भी पर क्षत्रिय नहीं है अतः वह सिंहासन का अधिकारी नहीं बन सकता तथा उसे हम लोग राज्याभिषेक नहीं करेंगे, ऐसा कहना शुद्ध मूर्खता तो है ही साथ ही घातक भी है अतः क्षत्रियों को जो अधिकार जन्मजात प्राप्त है उन्हें छीन लेना चाहिए।[13]

वर्ण व्यवस्था के निर्माताओं पर जातिभेद की उत्पत्ति के आरोप लगाये जाते हैं इस संदर्भ में सावरकर का कहना है कि जातिभेद किन्ही चार पाँच दुष्ट या कुटिल आदमियों या किसी एक वर्ग द्वारा अपना स्वार्थ साधने के लिए जानबूझकर बनाई गई कोई युक्ति नहीं है, बिल्कुल नहीं है। किसी गुप्त गुफा में इकट्ठा होकर कुछ मुट्ठी भर ब्राह्मणों ने किसी एक बुरे दिन, पूरे विश्व को लूटने के लिए जातिभेद का यह कूट रचा और सारे विश्व की पीढ़ी दर पीढ़ी की मुण्डियाँ, अपने दो-चार श्लोकों के जाल में पक्की तरह बाँध दी, ऐसा घटित

Vol. 2, Issue-2 (April-June, 2026), pp.105-111, ISSN: 3107-5088, www.cognitivethinking.in
होना जितना असंभव है उतना ही ऐसा समझना मूर्खतापूर्ण। केवल ब्राह्मणों की ही यदि यह चाल होती तो श्रीराम और श्रीकृष्ण तो ब्राह्मण नहीं थे फिर उन्होंने भी चातुर्वर्ण्य को क्यों उठाए रखा? यदि कोई कहे की क्षत्रिय आदि वर्ग बेचारे बोले थे इसलिए सहज ही ब्राह्मणों के माया जाल में फंस गए तो श्री कृष्ण क्या भोले थे या समुद्रगुप्त भोले थे? या शिवाजी भोले थे? मैंने यदि किसी से कहा कि कूद जा कुएं में और जान दे दे, तो तू मुक्त हो जाएगा तो ऐसा कहने वाला मैं जितना लुच्चा, उतना ही कुएं में तत्काल कूदने वाला भी मूर्ख।[14] जातिभेद को कल्पना कहे, षड्यंत्र कहें- ब्राह्मणों ने ही रचा- ऐसा क्षण भर के लिए मान लें तब भी व्यापक हिंदू समाज में ब्राह्मण मुट्ठी भर थे और उन मुट्ठी भर लोगों के शब्दों को विधि की शक्ति देने वाली राजशक्ति- दंड शक्ति किसकी थी? क्षत्रियों की ही तो! ब्राह्मणों का शब्द और क्षत्रियों की शक्ति इन दोनों के सहयोग से जातिभेद की प्रथा दीर्घजीवी हो सकी इसलिए उसका सारा दोष ब्रह्मक्षत्रों पर है, ऐसा कहकर वैश्यों या शूद्रों को भी कान पर हाथ रखकर स्वयं को निर्दोष मान लेना संभव नहीं है क्योंकि जब-जब ब्राह्मणों का शब्द और क्षत्रियों की शक्ति निर्मल्यावत् हुई जैसा कि वर्तमान काल में है- वैश्य, शूद्र तो क्या अतिशूद्र भी अपनी-अपनी जातियों से चिपके बैठे हैं। वह क्यों? वे ब्राह्मणों के शब्दों के लिए नहीं है। क्षत्रियों की शक्ति के लिए भी नहीं है अर्थात स्वयं की इच्छा के लिए ही तो है। जातिभेद की प्रथा में हर जाति को अपने से निचली जाति पर रोब जमाने का अवसर फोकट में मिल जाता है इसलिए यह प्रथा सभी को कुछ हद तक अच्छी लगती है और इसलिए अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ मानकर कोई कुछ भी कहे पर जातिभेद का निर्मूलन करने की इच्छा किसी की नहीं होती। उल्टे अपने जातीय अहंकार का ढिंढोरा पीटने के लिए ही इस-उसने जातिभेद का उपयोग किया और इसी कारण जातिभेद को इस-उसने इस या उस रीति से उठाये ही रखा। यह सच्ची बात है।...... यदि जातिभेद के वर्तमान अत्यंत विकृत स्वरूप से अपने हिंदू राष्ट्र की भयानक हानि हो रही हो तो जन्मजात जातिभेद की उस हानि का दोष किसी एक वर्ण के या व्यक्ति के सिर मढ़ने की अपेक्षा उस दोष के हिस्सेदार हम सब अब्राह्मण-चांडाल सब जातियाँ, सब वर्ण, सब व्यक्ति हैं ऐसा ही मानना उचित और इष्ट है। [15]

सावरकर ने इस जातिभेद की जड़े भारतीय समाज में बड़े गहरे तक फैली हुई बतायी हैं। उनका कहना है यह जातिभेद उच्च वर्ण से लेकर निम्न वर्ण तक सभी में व्याप्त है उनके अनुसार ब्राह्मणों के जाति अहंकार को जो सत्यशोधी पंथ समता के अति उच्च बिंदु तक जाकर अपने लिए कुछ प्राप्त कर लेता है वही पंथ उससे निचली जाति के द्वारा वैसी ही समता की मांग करने पर लाठी लेकर पिल पड़ता है, केवल जाति बंधन के पागलपन में। ब्राह्मण क्षत्रियों के ब्राह्मण बनना चाहते हैं, क्षत्रिय शूद्रों के ब्राह्मण बनना चाहते हैं, शूद्र महाशूद्रों के ब्राह्मण बनना चाहते हैं। इस तरह यह पागलपन केवल ब्राह्मण तक ही सीमित न रहकर अब्राह्मण, चांडाल तक पूरे हिंदू समाज के ही मांस-मज्जा में घुसा हुआ है। पूरा समाज-शरीर इस जात अहंकार के, जाति मत्सर के, जाति कलह के क्षय रोग से गलत गात हुआ है।[16] उनका स्पष्ट कहना था कि जिन लोगों को आज 'अछूत' माना जाता है, वे भी इस पाप के उतने ही दोषी हैं, जितने कि 'सछूत' हिंदू। क्योंकि, हर अछूत जाति अपने से नीची मानी जाने वाली किसी दूसरी जाति के साथ ठीक वैसा ही निर्मम व्यवहार करती है, जैसा व्यवहार दूसरे लोग खुद उसके साथ करते हैं।[17] उनके अनुसार जाति व्यवस्था का उन्मूलन राजनीतिक अभियानों के बारे में सोचने से कहीं जरूरी है, यह सच है कि राजनीतिक आजादी के बिना कई सामाजिक सुधारों पर कार्य नहीं हो सकता परंतु इन सामाजिक सुधारों पर कार्य होना चाहिए जो हमें स्वतंत्रता के बाद अपनी आजादी को स्थायी रखने में मदद करेंगे।[18] सावरकर इस जातिभेद की समस्या को एक राष्ट्र के लिए बड़ा घातक बताते हैं उनके अनुसार हिंदू राष्ट्र के लिए जो स्वतंत्रता हमें प्राप्त करनी है वह जातिभेद से जर्जर हुआ राष्ट्र-पुरुष कदाचित प्राप्त भी कर ले फिर भी इस रोग का उपचार होने से उसका निर्मूलन ना हुआ तो स्वतंत्रता प्राप्त करना पूर्णतः कठिन हो जाएगा या उसे प्राप्त करते ही उसको गँवाने की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी।[19]

सावरकर के अनुसार अपने राष्ट्र की अवनति के कारण खोजते हुए अन्य महत्वपूर्ण बातों की ही तरह ही जातिभेद के वर्तमान स्वरूप के इष्ट और अनिष्ट पहलुओं की पड़ताल करना भारतीय नेतृत्व का आज का अंत्यावश्यक और अपरिहार्य कर्तव्य हो गया है कोई ऐसा उद्यान जो फल फूलों से लदा हो जिसके पेड़ों की विशाल विस्तीर्ण छत्र एवं लता- बेल उल्लसित हो तो उन्हें देखकर उसे उद्यान के प्रकाश, जल और मिट्टी के निर्विकार होने का अनुमान सहज है पर यदि वृक्ष शुष्क हो, फल सड़े, फूल कुम्हलाये हुए हो तो वैसी स्थिति में उसे उद्यान के प्रकाश, जल और मिट्टी आदि में कोई एक घटक या सभी घटक दोषयुक्त हैं। यह अनुमान भी उसी तरह सहज होता है और फिर बाग़वान का कर्तव्य हो जाता है कि वह हर घटक को जांच कर किसमें क्या और कितना दोष है इसको जाने और तदनुसार दोष दूर करे।[20] उनके अनुसार सरकारी स्कूलों, परिवहन साधनों, पदों, सेवाओं और सार्वजनिक जीवन के हर पहलू में, किसी भी हिंदू को केवल जातिगत छुआछूत के आधार पर अन्य हिंदुओं को उनके सार्वजनिक अधिकारों से वंचित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।[21]

जाति पाँति के ऐसे अवरोधों को तोड़ने की सावरकर की सोच अत्यंत तर्कसंगत और निर्माणकारी थी।[22] स्पष्ट रूप से, इसका कोई राजनीतिक कोण नहीं था। वह एकदम निडर थे और लाभ या हानि के हिसाब से नहीं सोचते थे। एक प्रकार से समाज सुधार की उनकी गतिविधियाँ महाराष्ट्र में अंबेडकर से भी पूर्वकालिक थीं।[23] जाति भेद की समाप्ति की दिशा में उनका यहाँ तक कहना था कि उनके मृत शरीर को महार, मराठा, ब्राह्मण और मंग कंधा दें।[24]

उपसंहार:- उक्त के विवेचन से स्पष्ट है कि भारत में प्रचलित जातिभेद जन्मजात ना होकर पोथीजात है। इस जातिभेद का जन्म उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था के व्यापक रूप से प्रचलित हो जाने के बाद व्यवसाय, आहार, पंथ, प्रांत आदि आधारों पर जातियों एवं उपजातियों का निर्माण हुआ जिससे इस वर्ण व्यवस्था के घटक समुदायों के बीच निरंतर मतभेद बढ़ता चला गया और जिसकी चरम परिणति जातीय किलेबंदी के रूप में हुई जिन्हें हिंदू समाज की बेड़ियों अर्थात बंदियों जैसे रोटी बंदी, बेटी बंदी, वेदोक्त बंदी, व्यवसाय बंदी, स्पर्श बंदी आदि के रूप में जाना जाता है। और यह बेड़ियाँ उच्च और निम्न वर्ण में व्याप्त होने के साथ-साथ अंतः वर्णीय भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2005, पृष्ठ संख्या 88
2. विनायक दामोदर सावरकर, छह स्वर्णिम पृष्ठ, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 133
3. विनायक दामोदर सावरकर, सावरकर समग्र, भाग 7, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 37-38
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 38-41
5. विनायक दामोदर सावरकर, छह स्वर्णिम पृष्ठ, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2021, पृष्ठ संख्या 133
6. वीर सावरकर, हमारी समस्याएं, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ संख्या 16
7. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 17
8. विनायक दामोदर सावरकर, सावरकर समग्र, भाग 7, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 36-37
9. वीर सावरकर, हमारी समस्याएं, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ संख्या 16
10. विनायक दामोदर सावरकर, सावरकर समग्र, भाग 7, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 76-77
11. केसरी, 05.05.1931
12. वीर सावरकर, हमारी समस्याएं, राजपाल एंड संस, दिल्ली, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ संख्या 18
13. विनायक दामोदर सावरकर, सावरकर समग्र, भाग 9, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 216
14. विनायक दामोदर सावरकर, सावरकर समग्र, भाग 7, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 43

Vol. 2, Issue-2 (April-June, 2026), pp.105-111, ISSN: 3107-5088, www.cognitivethinking.in
15.पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 44-45
16.पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 32
17.वीर सावरकर, हिंदू राष्ट्र दर्शन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 296
18.बालाराव सावरकर, हिंदू महासभा पर्व, वीर सावरकर प्रकाशन, मुंबई, 1972, पृष्ठ संख्या 31
19.विनायक दामोदर सावरकर, सावरकर समग्र, भाग 7, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ संख्या 32
20.पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 26
21.वीर सावरकर, हिंदू राष्ट्र दर्शन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ संख्या 296
22.धनंजय कीर, वीर सावरकर, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 2019, पृष्ठ संख्या 193
23.रघुवेंद्र तंवर, विनायक दामोदर सावरकर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ संख्या 65
24.धनंजय कीर, वीर सावरकर, पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 2019, पृष्ठ संख्या 168